ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. No.- 78-82

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

भूमण्डलीयकरण एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति आर्थिक समस्या एवं भारतीय जातीयता

अनामिका कुमारी

शोध अध्येत्री– राजनीति विज्ञान विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार) भारत

Received-09.10.2022, Revised-15.10.2022, Accepted-20.10.2022 E-mail: akbar786ali888@gmail.com

सारांशः – ***विकास की भ्रामकता और द्विविधाओं को विभिन्न क्षेत्रों के प्रसंग में समझने का प्रयास किया गया है। इस शोध प्रपत्र का आशय विकासशील देशों जैसे–अमेरिका, अफ्रीका और एशिया के देशों तथा विशेषकर भारत के प्रसंग में संरचनात्मक रूपान्तरण की प्रक्रिया में उभर रही विकास की भ्रामकता तथा आर्थिक समस्या को व्यक्त करना है। यह एक विरोधाभास है कि एक तरफ से समाज नये सामाजिक–राजनीतिक–आर्थिक क्षमताओं के साथ अग्रसर हुए हैं, तो दूसरी तरफ, ये कुछ जटिल समस्याओं जैसे जातीयता, निर्धनता, बेरोजगारी, कुपोषण, सामाजिक जीवन में संघर्ष, साम्प्रदायिक दंगे, धार्मिक उन्माद और सजातीय कलह के उत्तरोत्तर शिकार हुए है। पुनः यह भी आश्चर्यजनक है कि पश्चिमीविकसित समाजों, जैसे– यू.एस.ए., जर्मनी, फ्रांस और ब्रिटेन आदि की सहायता से नियोजित परिवर्तन के अन्तर्गत प्रभृति कार्यक्रम एवं परियोजनाएं इन देशों में संचालित हैं, तब भी ये देश आत्म निर्भरता के अभाव, पिछड़ापन, परावलम्बन और राजनीतिक शक्ति संरचना में अस्थिरता से ग्रस्त है। ये रुग्ण लक्षण इन्हें भूमण्डलीय राजनीति, सामाजिक नैराश्य आर्थिक परावलम्बन और मानसिक कुण्ठा की ओर ले जा रहे हैं। जिसमें भारतीय जातीयता अछूती नहीं रही है।***

कुंजीभूत शब्द– विकास की भ्रामकता, विकासशील, संरचनात्मक रूपान्तरण, विरोधाभास, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक।

उधार की आर्थिक निर्भरता– पश्चिम से उधार लिए गये विकास के प्रतिमान और प्रारुप इन विकासशील देशों में न केवल मूल्य संघर्ष बल्कि समग्र जीवन शैली में, संघर्ष प्रादुर्भूत, किये हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध (1939 45) के बाद संयुक्त राज्य में मार्शल प्लान (पूर्ण रूप से U.S.A, में निर्मित) जिससे यूरोप के युद्ध प्रभावित समाजों की संरचना पुर्नगठित हुई, उसे इन देशों के लिए भी श्रेयस्कर समझा गया, किंतु यह बिल्कुल ही निरर्थक सिद्ध हुई और जे०के० गालब्रेथ और डब्ल्यू. डब्ल्यू. रोस्टोव के आकलन के प्रतिकूल सिद्ध हुई। उदाहरण के लिए, बड़ें उद्योग संयंत्र और कारखाने, बांध एवं बड़ी परियोजनाएं पश्चिमी, विकसित देशों से उभ्दूत प्रविधि एवं पूंजी के सहारे इन देशों को पुनः गठित होकर विकसित देशों के साथ समक्षकता हासिल करने हेतु जहाँ आगे किया है, वहीं निर्धनता, बेरोजगारी धनी.गरीब के बीच बढ़ती खाई, पारिस्थितिकीय असंतुलन का नैरर्न्तय तथा अतिशय जंगलों का कटाव, विनाश और जनजातीय लोगों की निजी सांस्कृतिक विशिष्टता के लोप, पलायन एवं अविस्थापना आदि ने संरचनात्मक रूपान्तरण के नाम पर सामाजिक जातीय राजनीतिक–सांस्कृतिक के आर्थिक विदूपण की समस्याए आविभूत किया है।

भूमण्डलीय राजनीति के संरचनात्मक रूपान्तरण– विश्व के बहुसंख्यक देशों के संरचनात्मक रूपान्तरण की नीतियों एवं कार्यक्रमों को विकास की धारणा ने विगत पाँच से अधिक दशकों से प्रभावित किया है। एक प्रमुख सामयिक वैचारिकी के रूप में विकास प्रक्रिया ने सार्वजनिक एवं वैयक्तिक प्रतिष्ठानों एवं संगठनों के उद्देश्यों एवं प्रयासों को निरूपित किया है (सुन्तान 1989 : 137)। कुछ विद्वानों ने तो विकास की मुक्ति के निरपेक्ष सिद्धान्त के रूप में देखना शुरू कर दिया (नन्दी 1987, 1989), कुछ ने उसे आधुनिकीकरण के मिथक के रूप में व्यक्त किया (उल्फ : 1981)।

विकास की अवधारणा का उद्भव 19वीं सदी की प्रगति के विचार से वस्तुतः प्रस्फुटित होती है और प्रगति की धारणा स्वयंमेव 18वीं सदी की दार्शनिक विचारधारा की देन है। इस प्रकार भूमण्डलीयकरण एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विकास का शास्त्रीय एवं पारंपरिक सिद्धान्त निम्नांकित बिन्दुओं को अभिव्यक्त करता है। (बरूनी 1989, सूत्तानः 1989)

1. इसमें पश्चिम के औद्योगिक रूप से विकसित देश उत्तरोत्तर प्रगति पथ पर अग्रसर है। ये देश विकसित है जबकि अन्य अनौद्योगिक देश अर्धविकसित है।
2. प्रत्येक समाज में व्यक्तियों की क्षमताएं एवं अधिकार समान है या भूमण्डलीय विभिन्न समाजों के बीच और समाजों के अन्दर असमानताएं (सामयिक–आर्थिक तो प्राकृतिक है, न ही पूर्व निर्धारित है। सामूहिक प्रयासों से इनका उन्मूलन सम्भव है। इस आशय से तथा कथित अर्धविकसित देश भी विकासोन्मुख हैं।
3. तर्कसंगत रूप से संगठित एवं नियोजित प्रयासों द्वारा विकास सम्भव है और विज्ञान और प्रविधि का सम्प्रेक्षण आर्थिक उत्पादकता की ससत वृद्धि की कुंजी है।
4. विभिन्न राष्ट्रों का शासनतंत्र वहाँ के नागरिकों की अभिप्साओं एवं आशाओं के प्रतिनिधि के रूप में विकास को अग्रसारित करने हेतु केन्द्रीय भूमिकाएं अदा कर सकता है।

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

5. आर्थिक दृष्टिकोण से विकास की गति और मात्रा का अभिमापक आर्थिक संसूचकों जैसे– समग्र राष्ट्रीय उत्पाद (जी.डी.पी) और प्रति व्यक्ति आय (पी.सी.आई.) द्वारा होता है। जबकि अल्प विकसित देश बहुतायत कृषि अर्थव्यवस्था द्वारा संचालित है, जबकि उच्च विकसित देशों में उद्योग एवं सेवाओं की प्रधानता है।

6. प्रथम दृष्टया, विकास का लक्ष्य आय और उत्पादकता की वृद्धि के अतिरिक्त जीवन स्तर में सुधार एवं उत्थान है।

उपरोक्त सिद्धान्त के प्रकाश में सघन जाँच से परिलक्षित होता है कि विकास की अवधारणा वस्तुतः समता के दर्शन एवं समानता मूलक वैचारिकी पर आधारित है या धनी और निर्धन, विकसित और अर्द्धविकसित के बीच दूरी समाप्त या न्यून की जा सकती है। (सैफः 1990) किन्तु सम्पूर्ण तृतीय विश्व के देशों एवं भारत विशेषकर विकास की दौड़ में गम्भीर भ्रामकता एवं सुविधाओं या दुविधाओं का सामना कर रहे हैं। इन भ्रामकताओं और दुविधाओं को निम्नांकित संरचनात्मक रूपान्तरणों एवं परिवर्तनों के सन्दर्भ में रेखांकित किया जा सकता है –

1. विकास बनाम सामाजिक समता– विकास के विश्वस्तरीय अनुभव यह इंगित करते हैं कि विभिन्न राष्ट्रों के भी तथा विभिन्न राष्ट्रों के भीतर समृद्ध एवं गरीब, शक्तिशाली एवं अशक्त के सन्दर्भ में सामाजिक दूरी उत्तरोत्तर बढ़ी है। (बेतई : 1983, 1993)

2. विकास बनाम सांस्कृतिक विविधता– विभिन्न समाजों में भूमण्डलीयकरण एवं विकास की होड़ में एक सर्वाधिक ज्वलंत समस्या आज 'सांस्कृतिक वैविध्य' विजातीयता एवं विभिन्नता के अस्तित्व एवं नैरन्तर्य को अपनी पहचान एवं अस्मिता प्रदर्शन के लिए बनाये रखने की है अन्यथा वैश्विक या भूमंडलीय विकास की दौड़ में ये लुप्त हो जायेंगी। तृतीय विश्व के देशों के सामने यह प्रश्न पैदा कर रहा है। भारत में ही क्षेत्रीय एवं सजातीय स्तर पर उभर रही चुनौतियाँ आग्रह करने वाली सूचक है। चाहे वह मेघापाटकर द्वारा संचालित सरदार सरोवर परियोजना से जुड़ा आन्दोलन हो या पर्यावरण अनुरक्षण मूलक सुंदर लाल बहुगुणा का टिहरी बांध परियोजना से जुड़ा आन्दोलन या ऐसे ही अन्य संरचनात्मक भावनाओं से जुड़े आन्दोलन जैसे– असम में बोड़ो एवं उल्फा आन्दोलन, बिहार एवं झारखंड में नक्सली आन्दोलन, दार्जिलिंग का गोरखा मुक्ति मोर्चा, मणिपुर, नागालैण्ड, त्रिपुरा और मिजोरम के जनजातीय लोगों के आन्दोलन या उत्तर प्रदेश का पूर्वांचल मूलक आन्दोलन। ऐसी स्थिति में अस्मिता के पराभव की कीमत पर विकास स्वीकार्य नहीं है। राष्ट्र की मानसिकता ऐसे विकास को अर्जित करने के प्रतिकूल है। ऐसे ही लक्षण अन्य तृतीय विश्व के देशों जैसे–लैटिन अमेरिका के चिली, इक्वेडोर, तेनेजुएला, मेक्सिको, ब्राजील, अफ्रीका के युगाण्डा, तंजानिया, नाइजीरिया, कांगो, दक्षिण अफ्रीका और दक्षिणी तथा उत्तरी एशियाई देश जैसे–मलेशिया, इण्डोनेशिया, थाईलैण्ड, श्रीलंका, म्यानमार में दृष्टिगत है।

3. विकास बनाम परिस्थिति एवं पर्यावरण– विकास की दौड़ में परिस्थितिकी असंतुलन एवं पर्यावरण प्रदूषण एवं दोहन का उभरता भय विकास को दुविधा की स्थिति में खड़ा कर दिया है और यह स्थिति विश्व स्तर पर उभरी है केवल भारत के सामने नहीं। एक तरफ विकास के तरफ बढ़ने की लिप्सायें हैं, तो दूसरी तरफ आक्रांत एवं भयभीत करने वाली चुनौतियों से भरे हुए विध्वंसक एवं परिणामों की भावी सम्भावना का भयावह कल्पचित्र, वैज्ञानिकों, परिस्थिति शास्त्रियों, पर्यावरणविदों, समाजशास्त्रियो और अर्थशास्त्रियों का ध्यानाकर्षण बड़ी परियोजनाओं की स्थापना एक अनुभव की तरफ किया है। बड़ी परियोजनाएं, भारी उद्योग जिनके फलस्वरूप जंगलों का विनाश, कटाव, परिस्थितिकीय असंतुलन भूमि उर्वरक क्षमता का ह्रास आदि ने सम्पूर्ण परिस्थितिकीय व्यवस्था में विसंगति और असंतुलन को बढ़ावा दिया है। (रेड्डीः 1986, गुहा : 1988) । इस परिदृश्य के साथ ही जनजातीय जनसंख्या का पलायन, विलोप आदि ने जनजातीय अस्मिता एवं उसकी सांस्कृतिक विविधता के अस्तित्व पर पराभव का सवाल खड़ा कर दिया हैं। विकास के ऐसे परिणाम निःसंदेह एक अराजब, संचरनात्मक और परिस्थितिकीय तनाव की स्थिति की तरफ ले जा रहे है (सी.एस. ई. 1982, 1985)।

विकास की विसंगतियों के अनुभव के आधार पर स्थायी एवं संवहनीय विकास से सम्बन्धित वैचारिकी एवं परियोजनाओं के विषय में बहुतेरे अध्ययन एवं सर्वेक्षण क्रियान्वित हुए हैं (ब्रन्टलैण्ड : 1987, 1989, पियर्स : 1989, हेनडरसन 1990)।

कुछ मौलिक प्रश्न निम्न हैं–

(1) भूमण्डलीकरण और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के तहत पश्चिमी समाज में आर्थिक दृष्टि से अन्तरनिहित संरचनात्मक विशिष्टताएं हैं। अतः पश्चिमी विकास के पैराडाइम और प्रारूप इन समाजों के संरचनात्मक संरूपण के साथ मेल नहीं खाते।
(2) विकास स्वयं में ही सांस्कृतिक वृद्धि और निरंतरता की उपज है और सांस्कृतिक भिन्नताएं किसी विकास प्रारूप की सार्वभौमिकता को वर्जित करती हैं। अतः किसी एक सामाजिक संरचना के उद्भूत प्रारूप और प्रतिमान दूसरी संरचना पर सटीक नहीं बैठते।
(3) संरचनात्मक रूपान्तरण और परिवर्तन की प्रक्रिया में विकास के प्रारूप और प्रतिमान समाज विशेष के भीतर से आविर्भूत

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

होने चाहिए, जो उस समाज के सामाजिक–सांस्कृतिक–आर्थिक–राजनीतिक अस्मिता के अनुरूप हो।

(4) विकासशील समाजों में प्रभृति प्रकार की विविधताएं, विषमताएं और अन्तः जन्य विरोधाभास निहित है। ऐसी स्थिति में अन्तः जन्य प्रारूप जो आधुनिक प्रविधि के तर्क संगत समावेश में संयुक्त होंगे, वे संवहनीय एवं स्थायित्वमूलक होंगे।

(5) भारत और अन्य एशियाई समाजों के सामाजिक संरचनात्मक परिवर्तन के सन्दर्भ में क्षेत्रीय, परिस्थितिकीय, उपसांस्कृतिक और सजातीय विचारों और मुद्दों का चुनाव विकास कार्यक्रम लागू करने से पहले प्राथमिकता के आधार पर होना चाहिए ताकि समकालीन विकास प्रक्रियाओं के साथ निरंतरता का प्रवाह कायम रहे। इसके विपरीत पश्चिमी समाजोंके केवल कार्बन–कापी पर आधारित विकास भ्रामकता, असंतोष, अराजकता के साथ अग्रसर होंगे और राष्ट्र की समग्र अस्मिता की बुनियाद को ध्वस्त करेंगे। निःसंदेह आज विश्व विज्ञान और प्रविधि के वृद्धि के साथ एक विश्व व्यवस्था भूमण्डलीय और सार्वभौमिकीकरण की तरफ अग्रसर हुआ है, तो उसी समय में विशिष्टता और विविधता आधुनिकता की चाह बन चुकी है। उदाहरण स्वरूप जापान और दक्षिण कोरिया में देखा जाता है।

(6) विकास की प्रक्रिया के माध्यम के मानव का सांस्कृतिक गन्तव्य क्या है? आज के समाज वैज्ञानिकों के सामने यह एक अनुन्तरित प्रश्न है। ऐसे प्रश्नों का उत्तर विकास के पश्चिमी प्रतिमानों के सम्प्रेक्षपण और क्रियान्वयन से पूर्व देना होगा। पूर्व पृष्ठों में व्यक्त विकास की भ्रामकता एवं दुविधाओं के प्रकाश में भारत और अन्य विकासशील समाजों के संरचनात्मक परिवर्तन में विकास की प्रक्रिया का समालोचनात्मक मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया।

अवलोकित परिणाम एवं प्रस्थापनाएं– आधार पर सामयिक घटनाक्रमों एवं विंगत दशकों के विकास अनुभव के कुछ मौलिक प्रास्थापनाएं जो इस गवेषणात्मक प्रपत्र में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, वे निम्न है–

(1) तृतीय विश्व के देशों के सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक विकास हेतु सहायता देने वाले पाश्चात्य पूंजीवादी देशों का सर्वथा उद्देश्य अपने राजनीतिक प्रभुत्व का उन देशों में प्रसार करना है जो सहायता धनराशि के साथ अन्तर्विहित लक्ष्य (Latent goal) के रूप में अविछिन्न रूप से सम्बद्ध होता है।

(2) पूंजीवादी विकसित देशों देब्रा प्रदत्त धनराशि औपनिवेशिक एवं साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों से मुक्त नहीं है, बल्कि सशर्त अनुबन्धित होती है, जिसके प्रावधानः पूंजीवादी देशों के उपभोगी उत्पादों, तकनीकी यंत्र, मशीनों एवं सैन्य अस्त्र–शस्त्र तथा तथा उद्यम प्रतिष्ठानों की स्थापना एवं विकासशील देशों से कच्चे माल ग्रहण करने तथा अपने उत्पादों के लिए बाजार बनाने के उद्देश्य संलग्न होते हैं। ऐसी स्थिति में, इन देशों की राष्ट्रीय पहचान खो सकती है। उचित होगा कि ये देश पाश्चात्य पूंजीादी औद्योगिकी देशों के बजाय जापान (पूर्व देश) के विकास प्रारूप का अध्ययन एवं अनुरूपण करें।

(3) पूंजीवादी पाश्चात्य औद्योगिक देशों से सहायता प्राप्ति के दौर में तृतीय विश्व के देश अनुग्रहीता के मानसिक आभार से दबे हुए हैं। फलस्वरूप वे अपने राष्ट्रीय पहचान से जुड़ी उत्पादन वस्तुओं को विश्व बाजारों, विशेषकर पूंजीवादी देशों में वरीयता के उच्च स्तर पर लाने में अप्रभावी है।

(4) अन्तर्राष्ट्रीय विकास अभिकरण विशेषकर इन्टरनेशनल मोनेटरी फण्ड, विश्व बैंक, यूनाइटेड स्टेट्स ऐजेन्सी फार इण्टरनेशनल डेवेलपमेन्ट इण्टर अमेरिकन डेवेलपमेन्ट बैंक आदि पूंजीवादी संसार के ही अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय प्रारूप की स्वीकृति एवं अनुमोदन पर आधारित है।

(5) तृतीय विश्व देशों के आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास हेतु पश्चिमी पूंजीवादी औद्योगिक देशों के सिद्धान्त प्रारूप अभिगम एवं प्रविधि उपयोगिता उत्साहवर्धक नहीं है क्योंकि तृतीय विश्व के देशों के पिछड़ेपन की ऐतिहासिकता, संस्कृति, सामाजिक संरचना एवं राष्ट्रीय पहचान से जुड़ी संस्थाएं, एवं मूल्य उन सिद्धान्तों एवं प्रारूपों से अनुरूपित नहीं हो पाते।

(6) तृतीय विश्व के बहुतेरे देश जो साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी दासता से मुक्त हुए हैं वहाँ के राष्ट्राध्यक्ष आत्मविश्वास की कमी के शिकार है। अतः सत्ताच्युत एवं अस्तित्व शून्य होने के भयबस विश्व के महान शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों (अमेरिका एवं सोवियत रूस) की राजनीतिक शक्ति एवं प्रशस्ति में संलग्न हैं तथा राष्ट्रीय कोष का अधिकांश अत्याधुनिक आयुध शस्त्रों की खरीद में व्यय कर रहे हैं।

(7) तृतीय विश्व के विकासशील देशों में विकास धन राशि एवं विदेशी सहायता का अधिकांश कृषि विकास, औद्योगिक उत्पादन आदि से कटौती कर विस्फोटक एवं असंतुलितरूप से बढ़ती जनसंख्या के परिणामस्वरूप जनता के भरण–पोषण, आश्रय स्वास्थ्य एवं शिक्षा पर व्यय हो जाता है, जो उत्पादनात्मक न होकर ऋणात्मक हो जाता है।

(8) तृतीय विश्व में परस्पर पड़ोसी देशों के बीच संचालित युद्ध पश्चिमी पूंजीवादी औद्योगिक देशों के अपने आयुध उत्पादनों एवं अस्त्र–शस्त्रों के अत्यधिक विक्रय, उपयोग एवं अर्थ व्यवस्था की समृद्धि के स्वस्थ परिचायक प्रतीत होते हैं। फलस्वरूप

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

युद्ध विराम एवं समापन में इनका उन्मेष वास्तविक न होकर उदासीन एवं राजनीतिक दिखावे मात्र का हो गया है। साथ ही युद्धरत देशों को आयुध आपूर्ति करने वाले विभिन्न विकसित देशों द्वारा हस्तक्षेप की स्थिति से उनके बीच निष्प्रयोजनीय कटुता बढ़ने की आशंका रहती है।

विकास की कार्यपद्धति का छद्म स्वरूप विकासशील समाजों में सामान्य रूप से और भारत में विशेष रूप से दृष्टव्य है। विकास की वैचारिकी अस्पष्ट रूप से परिभाषित रही है। विकास के सूचक या वृद्धि दर समग्र राष्ट्रीय उत्पाद और प्रतिव्यक्ति आय पूर्णतः आर्थिक मापदंड है। संरचनात्मक परिवर्तन और सांस्तिक विकास के सूचकों का विश्लेषण यथेष्ट रूप से की नहीं गयी है। पुनः आर्थिक विकास की योजनाएं, परियोजनाएं और कार्यक्रम विशेषकर भारत में सुपरिभषित सांस्कृतिक लक्ष्यों के प्रति तर्क संगत लगाव में नहीं है। भारतीय अनुभवों से यह संकेत मिलता है कि पश्चिम के सर्वाधिक शक्तिशाली ऋणदाता देशों में ऋणग्रहीता देशों पर राजनीतिक दबाव डालने में कोई भी हिचक नहीं रखते,तॉकि ऋणग्रहीता देश उन शक्तिशाली देशों की नीतियों, अभिरूचियों और हितों की प्रशंसा किया करे। वस्तुस्थिति यह है कि तृतीय विश्व के देश सतत् रूप से मानसिक आघ ात में दबे हुए हैं। आन्तरिक रूप से पश्चिमी देशों ने ऐसे प्रभावों और दबावों का प्रयोग किया है, जिसका मतलब यह है कि उनके प्रभावों और दबावों का प्रयोग किया है। जिसका मतलब यह है कि उनकी नीतियों और अभिरूचियों की अवहेलना करने पर विकासशील देशों की स्वतंत्रता और सम्प्रभुता द्वितीयक स्तर या गौण स्तर की समझी जायेगी (सी.टी.बी.टी. और एन.पी. टी. मीडिया रिपोर्ट)। पुनः विकसित शक्तिशाली देशों में छिपे या खुले और ऋण ग्रहण करने वाले विकासशील देशों को ऋण देने पर ही निषेध लगाने के भय से भी प्रताड़ित करते हैं, तॉकि ये देश ऋणदात देशों की स्तुति का गान गाते रहे या करते रहे (दुबे : 1988, 1990)। भारत और अन्य विकासशील देश यह अनुभव कर रहे हैं कि वर्तमान विश्व की आर्थिक व सामाजिक व्यवस्था में अन्तर्निहित रूप से अन्याय और असमानता छिपी हुई है। इसे पुनः संरचित करना होगा तॉकि विकासशील देश अपने संसाधनों के उपभोग और उत्पादन की प्रक्रियाओं में उचित हिस्सा का उपभोग अर्थपूर्ण ढंग से कर सकें।

उपरोक्त के अलावा बहुतेरे अन्तः जन्य कारक जैसे– क्षेत्रीय निष्ठाएं– सजातीय, भाषायी धार्मिक, साम्प्रदायिक और स्थानीय लगाव तथा निष्ठाएं, जो विकासशील समाजों में उत्तरोत्तर कायम है बहुत हद तक अप्रत्याशित दिशा में परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रेषित किया है और राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक सुदृढ़ता की शक्ति का क्षय किया है। इन्हें निर्धनता की स्थिति संस्कृति और अभावबोध की राजनीति के रूप में समझना होगा। प्रशासनिक स्तर पर प्रबल किंतु भ्रष्ट नौकरशाही व्यवस्था तथ इन देशों में विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका के कार्यक्षेत्रों में सीमा उल्लंघन, भ्रष्ट नेतृत्व तथा विधायकों एवं सांसदों और राज्यों के स्वार्थलोलुप नेताओं ने विकासशील देशों के स्वच्छ एवं साफ नागरिक प्रशासन प्रदान करने में काफी पीछे कर दिया है (हेटरः 1972, हडसन : 1971, मेन्डे : 1973)।

उपरोक्त प्रतिकूल परिस्थितियों के अलावा उत्तरोत्तर विस्फोटक जनसंख्या की वृद्धि, निर्धनता, अशिक्षा, बेरोजगारी और ग्रामीण ऋण ग्रस्तता, गाँव से नगरों की तरफ निर्बाध पलायन, त्रुटिपूर्व भूमि विकास कार्यक्रम आदि कुछ प्रमुख कारण हैं जो इन समाजों को विकास पथ पर आगे बढ़ने में अवरोध पैदा करते हैं। विकास की दशा और दिशा की सही तस्वीर स्पष्ट न होकर भ्रामक बन जाती है। ऐसी स्थिति में विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था, राजनीति और समाज संरचना विकास के दौड़ में विद्रूपित हुई है। इसमें जाति और राजनीति का गठबंधन मुख्य बाधा है।

समीक्षा और निष्कर्ष– विगत 19वीं सदी में भूमण्डलीकरण एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर आर्थिक समस्या का प्रभाव रहा। बुद्धिजीवियों और विचारकों में इस तथ्य को लेकर काफी अशांति रही, कि औद्योगिकरण के परिणाम सामाजिक रूप से घातक है, औद्योगिकीकरण की दौड़ में सामुदायिक सुदृढ़ता का ह्रास होगा और आदर्शशून्यता जिसकी चर्चा दुर्खीम ने किया है या परकीकरण, जिसकी चर्चा मार्क्स ने किया है, कि स्थितियां विकसित होगी। यद्यपि बहुतेरे सिद्धान्तकारों ने औद्योगिक विकास को प्रगति और समृद्धि के शक्ति के रूप में स्थापित किया है। भारत के विषय में यह धारणा बनी कि इसका पिछड़ापन औद्योगिक विकास में कमी के कारण है। इस दिशा में तृतीय विश्व के देशों के व्यावहारिक अनुभवों से परिलक्षित होता है कि विज्ञन, तकनीकी और औद्योगिक विकास की प्रक्रिया में शोषण के नये और परमार्जित माध्यम भी विकसित हुए हैं। बहुराष्ट्रीय निगम, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष विश्वबैंक, यूनाइटेड स्टेट्स एजेंसी और इण्टरनेशनल डेवलपमेन्ट जो सामाजिक आर्थिक सहायता के स्टेट्स एजेंसी और इन्टरनेशनल डेवलपमेन्ट जो सामाजिक–आर्थिक सहायता के अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरण के रूप में प्रतिष्ठित है किंतु इनके अन्तर्निहित प्रयास विकासशील देशों को सतत् बन्धक बनाये रखना है (मेन्डेल : 1978, फास्टरः 1989)। एक दूसरा तर्क यह है कि विभिन्न देशों में आर्थिक और सामाजिक असमानताएं स्वयं ही विकास मार्ग में अवरोध है। यूरूग्वे के प्रसिद्ध इतिहासकार एवं उपन्यासकार एडवार्डो गैलिनो (1989) के अनुसार, इन द्वैध स्तरीय समाजों में गरीब लोग समाचार पत्र बेचते हैं, लेकिन पढ़ नहीं सकते, कपड़े सिलते हैं, जिसे वे पहनते नहीं, कारों की पालिश करते हैं, जिसके वे मालिक नहीं, भवनों

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

का निर्माण करते हैं, जिसमें वे नहीं रहते। विभिन्न राष्ट्रों के बीच तथा विभिन्न राष्ट्रों के अन्दर समता की समस्या विकास की एक बुनियादी दुविधा (डाइलमा) के रूप में उभरी है। (वेतेई 1983) ग्रामीण कार्यक्रमों का बहुतांश भारत के संदर्भ में देखा जाय तो चाहे वे समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम हो, गाँवों के आर्थिक और राजनीतिक रूप से प्रभावी समूहों द्वारा ही दोहन हुआ है, क्योंकि सरकार के निवेश का सर्वाधिक लाभ इन्होंने हासिल किया है। (दूबे, 1988, 1994, डिसूजा 1970)

जहाँ तक विकास के सांस्कृतिक आलोचना का प्रश्न है, इसे ब्राजील और मैक्सिको जैसे लैटिन अमेरिकी देशो में देखा जा सकता है। जहाँ आर्थिक शोषण के साथ ही जनजातीय समुदाय की आत्मीयता का भी विनाश हुआ है। ऐसे ही और स्पष्ट अनुभव भारतीय जनजातियों से भी दृष्टिगत है, जो आधुनिक विकास प्रक्रियाओं, योजनाओं/परियोजनाओं के शिकार हुए हैं विकास परियोजनाओं में जहाँ भौतिक खुशहाली की आशा होती रही वहीं पर जनजातियों का विस्थापन, पलायन तथा इनकी सजातीय एवं उपसांस्कृतिक पहचान भी लुप्त प्राय होने लगी है। भारत में विकास के प्रवाह में सांस्कृतिक विविधता का काफी ह्रास हुआ है। एक प्रखर समालोचक के शब्दों में परम्परा, श्रेणी–बद्धता, मानसिक आदतें अर्थात समाज का समग्र संरूपण, नियोजकों के यांत्रिक प्रारूप में अदृश्य हुआ है। समाजशास्त्र के एक अध्येता के रूप में मेरा अवलोकन है कि आधुनिक विज्ञानवाद उपभोक्तावाद और औद्योगिकीकरण पूर्व के विकासशील देशों की अभीप्सा और सांस्कृतिक पहचान के विरुद्ध अर्थात् प्रतिगामी सिद्ध हो रहे हैं। सन 1970 से आगे के दशकों में विकास की सांस्कृतिक आलोचनायें, पारिस्थितिकीय आलोचनाओं के साथ जुड़ गयीं । विश्व स्तर पर यद्यपि विकास के पश्चिमी प्रतिमान वांछित भी हो तो पर्यावरण के दृष्टिकोण से संभव नहीं है और वास्तव में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया ने स्वयं ही बहुत हद तक पर्यावरण में गिरावट, पारिस्थितिकीय असंतुलन तथा वन्य पशुओं का विलोप किया है। आज वस्तुतः भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग के सामने प्राकृतिक संसाधनों की कमी आयी है। वन्य शिकारियों के लिए शिकार की कमी चिड़ियाघरों और मछुवारों के सामने भी आखेटक पक्षियों की और मछलियों की कमी, झूम खेती करने वालों के सामने वन्य भूमि का अभाव पशुचारा, ईंधन, लकड़ी तथा कृषक मजदूर और जनजातीय लोगों के लिए कच्चे संसाधनों एवं पदार्थों की कमी हुई है। पेयजल से लेकर कृषि एवं उद्योग के लिए वांछित गुलवत्ता के जल का अभाव आदि कुछ ज्वलंत उदाहरण है। वस्तुत भूमण्डलीकरण के साथ समस्त समाज अभूतपूर्व परिस्थितिकीय संकट से गुजर रहे हैं। अब पर्यावरण विकास का विषय समाजशास्त्रियों के लिए प्रायः विशेष अभिरुचि का है।

उपरोक्त अवलोकन के प्रकाश में विकास के विषय पर बहुत कुछ चर्चा संभव है। बहुतेरे विद्धान विकास प्रतिमान के विकल्पों की बात करते हैं या यह कि विकासशील देशों के लिए पश्चिम से उद्धत विकास प्रतिमानों की जगह पर विकास का अन्तः अन्य प्रारूप सामाजिक रूप से उदारवादी हो, सांस्कृतिक दृष्टि से संवदेनशील और पर्यावरण के दृष्टिकोण से संवहनीय हो।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आरमडी, एच. डब्ल्यू. 1987 इकोनोमिक्स डेवेलपमेन्ट : द हिस्ट्री आफ एन आइडिया।
2. वरूनी, तारिक, 1989–मार्डनाइजेशन एपड डिसकोनटेन्ट।
3. दूबे, एस.सी. 1994– ट्रेडिसन एण्ड डेवेलपमेन्ट।
4. दावेस, एस.एच. 1977– विक्टम्स आफ दी मिराकल।
5. दूबे, एस.सी., 1988–माईनाइजेशन एण्ड डेवेलमेन्ट
6. फास्टर सी आर्टर, 1985 – दी सोशियोलॉजी आफ डेवेलमेन्ट।
7. गालिनियो, एण्डयोर्डो, 1989– दी अंदर वाल।
8. हेटर, टेरेसा, 1971– ऐंड एज इन्टीरिलिज्म।
9. मेन्डे, टीबर, 1975 AIA to Recolonization Lessons of a failure.
10. नन्दी आशिष, 1987–ट्रैडिसन, तारियानिस ओटोपेस।
11. नन्दी, अशिव, 1989– साइंस, हेगेनोमी एण्ड वॉयलेन्स।

*****